पंचम प्रकरण

प्रकृति एवं त्योहार वर्णन

काव्य और प्रकृति वर्णन : प्रकृति का अर्थ है स्वाभाविक । जिसकी रचना में प्रकृति ही निमित्त एवं उपादान होती है और मनुष्य का मन कल्पित रूप या ढांचा (फार्म) उस वस्तु के सहज विकास में निश्चित नहीं रहता वही प्रकृति है[१]।

मनुष्य स्वयं भी प्रकृति है। परन्तु बुद्धि के अभिमान में वह प्रकृति की सीमा के बाहर कूद आता है । जो हो, लेकिन प्रकृति का मनुष्य जीवन से सदा ही गहरा सम्बन्ध रहा है । वैदिक युग में इस सम्बन्ध का सच्चा दर्शन होता है। वैदिक रचनाओं में सूर्य-चन्द्र वरुण के सम्बन्ध में लिखे गये उपासना मन्त्रों की प्रचुरता है ! प्रकृति उपासना को मिथ्या देव भावना कहकर टालने वालों से यही निवेदन है कि वे समझें कि इस उपासना में कुछ रहस्य है । सूर्य चन्द समुद्र मेघ पर्वत इन शब्दों से वैदिक साहित्य भरा हुआ है । किसी वस्तु या व्यक्ति की उपासना श्रद्धा अभिव्यक्ति की सीमा है ।सम्पूर्ण आर्य जीवन तथा आर्य साहित्य प्रकृति की ही गोद में पला। एक उपनिषदीय वर्णन देखिए -- 'उनमें जो रजत खण्ड हुआ वह यह पृथिवी है और जो सुवर्ण हुआ वह द्युलोक है । इस अण्डे का जो जरायु (स्थूल गर्भवेष्ठन) था वही ये पर्वत हैं । जो उल्व (सूक्ष्म गर्भवेष्ठन) था, वह मेघों के सहित कुहरा है । जो धमनियां थीं वे नदियां हैं तथा जो वस्तिगत था वह समुद्र है[२]।

वैदिक काल के बाद भी रामायण और महाभारत में प्रकृति वर्णन के अनेक स्थल बड़े सुन्दर हैं । देखिये --

---

१. हिन्दी साहित्य के विविधवाद , पृ० २६७ -- डा० प्रेमनारायण शुक्ल

२. छान्दोग्य उपनिषद, खंड १६, मंत्र २

मेघ कृष्णाजिनधरा धारा यज्ञोपवीतिन:।
मारुतापूरित गुहा: प्राधीता इव पर्वता: ।।[१]

इन पहाड़ों ने, जिनकी कंदराओं में हवा भरी हुई है, जो मेघ रूपी काले मृग का चर्म और धारा रूपी यज्ञोपवीत धारण किये हुये हैं, मानों अध्ययन आरम्भ कर दिया है।

इस प्रकार भारतीय साहित्य के विकास क्रम को देखते हुए हम कह सकते हैं कि प्रकृति का सच्चा रूप धीरे-धीरे काव्य से दूर होता गया। लेकिन यह प्रकृति मान-अपमान का ख्याल न करते हुए आज भी अब से इति तक सम्पूर्ण सृष्टि को चक्रवाल की तरह घेरे हुए है। काव्य और प्रकृति के इसी सम्बन्ध पर विचार करते हुये आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है -- हृदय पर नित्य प्रभाव रखने वाले रूपों और व्यापारों का भावना के साथ लाकर कविता बाह्य प्रकृति के साथ मनुष्य की अन्त:प्रकृति का सामंजस्य घटित करती हुई उसकी भावात्मक सत्ता के प्रसार का प्रयास करती है। यदि अपने भावों को समेट कर मनुष्य अपने हृदय को शेष सृष्टि के किनारे कर ले या स्वार्थ की पशु वृत्ति में ही लीन रक्खे तो उसकी मनुष्यता कहां रहेगी ? यदि वह लह लहाते हुए खेतों और जंगलों, हरी घास के बीच घूम घूमकर बहते हुए नालों, काली चट्टानों पर चांदी की तरह ढलते हुये झरनों, मंजरियों से लदी हुई अमराइयों और पर्वत के बीच खड़ी फाड़ियों को देख दंग भर लीन न हुआ, यदि कलरव करते हुए पक्षियों के आनन्दोत्सव में उसने योग न दिया, यदि खिले हुए फूलों को देख वह न खिला, यदि सुन्दर रूप सामने पाकर अपनी भीतरी कुरूपता का उसने विसर्जन न किया, यदि दीन दु:खी का आर्तनाद सुन वह न पसीजा, यदि अनाथों और अबलाओं पर अत्याचार होते देख वह क्रोध से न तिलमिलाया, यदि किसी बेढब या विनोदपूर्ण उक्ति पर न हंसा तो उसके जीवन में रह क्या गया ? इस विश्व-काव्य की रसधारा में जो थोड़ी देर के लिए निमग्न न हुआ उसके जीवन को मरुस्थल की यात्रा ही समझनी चाहिए[२]।

---

१. वाल्मीकि रामायण, किष्किन्धा काण्ड, सर्ग २८
२. चिन्तामणि, भाग १, पृ० १४५-४६

काव्य में प्रकृति वर्णन का रूप :

आचार्य शुक्ल ने प्रकृति वर्णन के दो रूप लिये हैं -- १. बिंबग्रहणात्मक रूप, २. अर्थग्रहणात्मक रूप। 'बिंब ग्रहण वहीं होता है जहां कवि अपने सूक्ष्म निरीक्षण द्वारा वस्तुओं के अंग-प्रत्यंग, वर्ण आकृति तथा उनके आस-पास की परिस्थिति का परस्पर संश्लिष्ट विवरण देता है। बिना अनुराग के ऐसे सूक्ष्म व्यौरों पर न दृष्टि जा सकती है न रम ही सकती है। अतः जहां ऐसा पूर्ण और संश्लिष्ट चित्रण मिले वहां समझना चाहिए कि कवि ने बाह्य प्रकृति को आलंबन के रूप में ग्रहण किया है[१]'। उदाहरण देखिये --

अवश्याय निपातेन किञ्चित्प्रक्लिन्न शाद्वला।
वनानां शोभते भूमिर्निविष्ट तरुणातपा॥
स्पृशंस्तु शीतमुदकं द्विरदः सुखम्।
अत्यन्त तृषितो वन्यः प्रतिसंहरते करम्॥
अवश्याय तमोनद्धा नीहार तमसावृता:
प्रसुप्ता इव लक्ष्यन्ते विपुष्पा वन राजय:[२]॥

वन की भूमि जिसकी हरी हरी घास ओस गिरने से कुछ कुछ गीली हो गई है। तरुण धूप के पड़ने से कैसी शोभा दे रही है। अत्यन्त प्यासा जंगली हाथी बहुत शीतल जल के स्पर्श से अपनी सूंड सिकोड़ लेता है। बिना फूल के वन समूह कुहरे के अन्धकार में सोए से जान पड़ते हैं।

अर्थग्रहण के भीतर वर्ण्य वस्तु का संकेत मात्र मिलता है, चित्र नहीं। कमल शब्द से जब हमारे सामने हंसते हुए नाल पत्र संयुक्त पुष्प का, स्वच्छ सरोवर का रूप आ जाय तब हम उस शब्द में बिंबग्रहण की शक्ति मानेंगे। किन्तु जब कमल शब्द से पुष्प के एक प्रकार मात्र का संकेत मिले तब समझना चाहिए कि कमल शब्द का अर्थ-ग्रहण हो रहा है।

प्रकृति वर्णन में जहां बिंबग्रहण होता है वहां समझ लेना चाहिये कि कवि ने आलंबन के रूप में प्रकृति का वर्णन किया है। प्रकृति वर्णन का एक दूसरा रूप भी

---

१. चिन्तामणि, भाग १, पृ० १४७-४८
२. वाल्मीकि रामायण

है जिसे प्रकृति का उद्दीपनगत वर्णन कहते हैं। जब हम प्रकृति के किसी सुन्दर या कुरूप दृश्य का वर्णन एक दर्शक के रूप में करते हैं और उस दृश्य को देखने से मेरे मन में उत्पन्न भाव वही है जो विश्व के प्रत्येक सहृदय के मन में उस दृश्य को देखकर उत्पन्न हो सकता है, तब हम उस वर्णन को प्रकृति का आलंबनगत वर्णन या प्रकृति का स्वतन्त्र वर्णन कहते हैं। किन्तु जब एक ही दृश्य विभिन्न सहृदयों में विभिन्न प्रकार के भाव उत्पन्न करने लगता है तब समझ लेना चाहिये कि ये वर्णन उद्दीपनगत हैं। हम सुखात्मक या दुःखात्मक -- जिस भावधारा में लीन रहते हैं उसी के अनुरूप हमें प्रकृति भी सुखात्मक या दुःखात्मक दिखाई पड़ती है। ऐसी स्थिति में प्रकृति के संबन्ध में हम जो कुछ कहते हैं वह सब उद्दीपनगत वर्णन का ही रूप है। इस प्रकार के वर्णन में हम भाव से प्रकृति की ओर बढ़ते हैं। प्रकृति की उद्दीपनगत वर्णन भावाधीन होता है। भावाधीन से आशय यह है कि प्रकृति अपने सच्चे रूप में सामने नहीं आ पाती है। देखने वाले की भाव स्थिति के अनुरूप प्रकृति के चित्र भी अपना सच्चा रूप त्यागकर दूसरा रूप धारण कर लेते हैं। आलंबनगत वर्णन भावाधीन नहीं होता। जब हम प्रकृति का सच्चा रूप देखते हैं तब उस रूप के अनुसार कोई भाव जाग्रत हो जाता है। वह भाव पूरे सहृदय समाज का होता है। प्रकृति के दृश्य को देखने के पहले हम भावग्रसित नहीं रहते। आचार्य शुक्ल ने आलंबनगत प्रकृति वर्णन को ही सच्चा प्रकृति वर्णन कहा है। "यदि किसी कवि ने ऐसी वस्तुओं और व्यापारों को अपने शब्द चित्र द्वारा सामने उपस्थित कर दिया जिनसे श्रोता या पाठक के भाव जाग्रत होते हैं, तो वह एक प्रकार से अपना काम कर चुका। संसार की प्रत्येक भाषा में इस प्रकार के काव्य वर्तमान हैं जिनमें भावों को प्रदर्शित करने वाले पात्र अर्थात् आश्रय की योजना नहीं की गई है। केवल ऐसी वस्तुएं और व्यापार सामने रख दिये गये हैं जिनसे श्रोता या पाठक ही भाव का अनुभव करते हैं"[१]। शुक्ल जी के इस कथन से स्पष्ट है कि आलंबनगत प्रकृति वर्णन का आश्रय श्रोता या पाठक भी हो सकते हैं। आलंबनगत प्रकृति वर्णन के कुछ उदाहरण देखिए --

---

१. चिन्तामणि, भाग २, पृ० ४३-४४

(१) निष्कूजस्तिमिता: क्वचित्क्वचिदपि प्रोच्चण्ड सत्वस्वना:
स्वेच्छा सुप्त गभीर भोग भुजग श्वास प्रदीप्ताग्नय: ।
सीमान: प्रदरोदरेषु विरल स्वल्पाम्भसो या स्वयं
तृष्यद्भि: प्रतिपूर्यकैरजार: स्वेद द्रव: पीयते [१] ।।

कहीं पर शब्द शून्य अतएव निश्चल और कहीं पर व्याघ्रादि क्रोधी जन्तुओं के शब्दों वाले । अपनी इच्छा से सोये हुये तथा गमनशील शरीर वाले सर्पों के श्वासों से प्रचलित अग्नियों से युक्त और गड्ढ़ों के बीच में बहुत कम जलवाले सीमा भाग हैं । जहां पर प्यासे हुए गिरगिट अजारों के पसीनों की बूंदें पी रहे हैं ।

(२) वृष को तरनि तेज सहसौ किरिन करि
ज्वालन के जाल विकराल बरषत हैं ।
तचति धरनि जग जरत झरनि सीरी
छाहं को पकरि पंथी पंछी बिरमत हैं ।।
सेनापति नेकु दुपहरी के ढ़रक होत
घमका विषम ज्यों न पात खरकत हैं ।
मेरे जान पौनौं सीरी ठौर को पकरि कौनौ
घरी एक बैठि कहूं घामे बितवत हैं [२] ।।

ग्रीष्म वर्णन के इन दो चित्रों में उस ऋतु का भीषण वातावरण खींचा गया है । अब उद्दीपनगत प्रकृति वर्णन का कुछ उदाहरण देखिये --

(१) नूतन किसलय मनहुं कृसानू ।
काल निसाचर निसि ससि भानू ।।
कुवलय विपिन कुंत वन सरिसा ।
वारिद तपत तेल जनु वरिसा ।।
जे हित रहत रहे तेहि पीरा
उरग स्वास सम त्रिविध समीरा [३] ।।

---

१. उत्तर रामचरितम्, अंक २, श्लोक सं०१६
२. कवित्त रत्नाकर, तृतीय तरंग
३. रामचरित मानस, सुन्दर काण्ड

(२) दूरि जुराई सेनापति सुखदाई देखौ
आई रितु पावस न पाई प्रेम पंतिया ।
धीर जलधर की सुनत धुनि धरकी है
धरकी सुहागिन की छोड़ भरी छतिया।।
आई सुधि वर की हिए में आनि खरकी तू
मेरी प्रान प्यारी यह प्रीतम की बतिया।
बीती आँधि सावन की लाल मन भावन की
डग मैं बावन की सावन की रतिया[१] ।।

रीतिकालीन प्रकृति वर्णन : रीतिकाल की सौन्दर्य दृष्टि रुग्ण हो गई थी । उसमें सौन्दर्य परखने की दृष्टि नहीं थी । सच्चा सौन्दर्य आभूषण की दुनिया से दूर होता है । देखिये --

सरसिजमनुविद्धं शैवलेनापि रम्यम्
मलिनमपि हिमांशोर्लक्ष्म लक्ष्मीं तनोति।
इयमधिक मनोज्ञा वल्कलेनापि तन्वी
किमिव हि मधुराणां मण्डनं नाकृतीनाम्[२] ।।

शैवाल से लिपटा हुआ भी सरसिज सुन्दर लगता है , मलिन होने पर भी चन्द्रमा अपनी श्री का प्रसार करता है। कृशांगी शकुन्तला बल्कल धारण कर लेने पर और भी अधिक सुन्दर प्रतीत हो रही थी । सौन्दर्य को आभूषण की आवश्यकता नहीं होती ।

लेकिन रीतिकाल का कवि सौन्दर्य और आभूषण दोनों को एक ही वस्तु मानता था । वह सौन्दर्य को आभूषण का ही पर्यायवाची शब्द मानता था । उस काल के आचार्य ने घोषित कर दिया था --

जदपि सुजाति सुलच्छनी सुबरन सरस सुवित्त ।
भूषन बिनु न विराजई कविता बनिता मित्त[३] ।।

१, कवित्त रत्नाकर, तृतीय तरंग
२, अभिज्ञान शाकुन्तलम् -- कालिदास
३, रामचन्द्रिका, केशवदास

इस युग का कवि नारी के शरीर की परिक्रमा करके ही कविता लिखने बैठता था। रूप वर्णन उसकी कविता का प्रधान विषय था। वैभव विलास का दृश्य एवं सामंतीय जीवन की रंगीनी का वर्णन, अलंकार की हठयोगी साधना, नारी के रूप का मांसल वर्णन उस काल की मुख्य काव्य प्रवृत्तियां है। कविता की तरह वनिता भी कृत्रिम हो चली थी। वह आभूषण के सौन्दर्य से ही सुन्दरी बनी थी।

महाकवि कालिदास ने रूप की विशेषता का उल्लेख इस पंक्ति में किया है --न रूपमित्यव्यभिचारि तद्वचः[1]। सौन्दर्य पापाचार या वासना का कारण नहीं होता। लेकिन इस युग में सौन्दर्य दृष्टि दूषित हो चली थी। रंग महल के आंगन में नायिका की कंदुक क्रीड़ा को देखने के लिये नायक झरोखे में मुंह गड़ाये खड़ा रहता था। रीतिकाल के कवि के सौन्दर्य चित्रों में सामन्तीय जीवन की रंगीनियां उभरी हुई हैं। "उसे मृदंग की मन्द मधुर ध्वनि, रासरंग की तरंग, शत शत दीपकों के प्रकाश तथा धूप, अगरु, चोवा चंदन और घनसार के सुगंधित विस्तार में ही आनन्दोपलब्धि हुई है[2]"। महाकाव्य के लक्षणों को पूरा करने के लिये महाकवि केशव प्रकृति का वर्णन करना चाहते थे लेकिन बुरी तरह असफल रहे। उनके प्रकृति वर्णन से दूसरे कवि का प्रकृति वर्णन न करना ही अच्छा है। प्रकृति को देखने के लिये जिस दृष्टि की आवश्यकता होती है महाकवि में उसका अभाव था। दो एक उदाहरण देखिये--

(१) विषमय यह गोदावरी अमृतन को फल देति।
केशव जीवनहार को दुख अशेष हरि लेति[3]॥

(२) सब जाति फटी दुख की दुपटी कपटी न रहै जहं एक घटी।
निघटी रुचि मीचु घटी हूं घटी जग जीव जतीन की छूटी॥
अघ ओघ की बेरी कटी विकटी निकटी प्रगटी गुरु ज्ञान गटी।
चहु ओरन नाचत मुक्त नटी गुन घूरजटी बन पंचवटी[4]॥

---

१. कुमार सम्भव, सर्ग ५
२. देव और बिहारी, पृ० १३०
३. संक्षिप्त रामचन्द्रिका --अरण्य काण्ड, छंद सं० २६
४. वहीं, छंद सं० १८

(३) शोभत दण्डक की रुचि बनी ।
भांतिन भांतिन सुन्दर बनी।।
सेव बड़े नृप की जनु लसै ।
श्री फल भूरि भाग्य जंह बसै।।
बेर भयानक सी अति लगै।
अर्क गूह जहां जागगै।।
नैनन को बहुरूपन गुसै ।
श्री हरि को जनु मूरति लसै ।।
पाण्डव की प्रतिमा सम देखौं ।
अर्जुन भीम पद्म मति लेखौं[१] ।।

रीतिकालीन प्रकृति वर्णन पर विचार करते हुये शुक्ल जी ने लिखा है -- सूर और तुलसी आदि स्वच्छन्द कवियों ने हिन्दी कविता को उठाकर खड़ा ही किया था कि रीतिकाल के शृंगारी कवियों ने उसके पैर छानकर उसे गंदी नालियों में भटकने के लिये छोड़ दिया । फिर क्या था, नायिकाओं के पैरों में मखमल के जूते बिछौने गड़ने लगे। यदि कोई षड्ऋतु की लकीर पीटने खड़े हुए तो कहीं शरद् की चांदनी से किसी विरहिणी का शरीर जलाया, कहीं कोयल की कूक से कलेजों के दो टूक किये, कहीं किसी को प्रमोद से प्रमत्त किया। उन्हें तो इन ऋतुओं का उद्दीपन मात्र, मान संयोग या वियोग की दशा का वर्णन करना रहता था । उनकी दृष्टि प्रकृति के इन व्यापारों पर तो जमती नहीं थी । नायक या नायिका ही पर दौड़ दौड़ कर जाती थी । अतः उनके नायक या नायिका की अवस्था विशेष का प्रकृति की दो चार इनी-गिनी वस्तुओं से जो सम्बन्ध होता था उसी को दिखाकर वे किनारे हो जाते थे[२] । पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने रीतिकालीन प्रकृति वर्णन के सम्बन्ध में विचार करते हुए लिखा है -- रीति की शृंखला में बंध जाने से कवियों ने प्रकृति की ओर से भी अपनी

---

१. संक्षिप्त रामचन्द्रिका, अरण्य काण्ड, छंद सं० २०-२१
२. चिन्तामणि, भाग १, पृ० १६७

दृष्टि खींच ली थी । भक्तों ने भी प्रकृति का कोई अच्छा उपयोग नहीं किया । प्रकृति को अपनी दृष्टि से देखने और उद्दीपन के बंधन को तोड़कर चलने का प्रयास नहीं दिखाई देता । सेनापति की रचना में प्रकृति कहीं-कहीं उद्दीपन के बंधन से मुक्त अवश्य मिल जाती है । गुमान मिश्र का 'कृष्ण चन्द्रिका' नामक प्रबन्ध काव्य इस दृष्टि से विशेष ध्यान देने योग्य है । पर उधर किसी समीक्षक की दृष्टि अभी नहीं गई है। कालिदास, भवभूति आदि पुराने संस्कृत कवियों की भांति इस प्रबंध काव्य में गुमान मिश्र ने प्रकृति के सुंदर चित्र कराये हैं । गुमान के भाई लुमान का अप्रकाशित 'कृष्णायन' भी इस दृष्टि से ध्यान देने योग्य है । प्रकृति के सुंदर मैदान (महोबा) बुन्देलखण्ड) में रहने वाले इन कवियों की महत्ता प्रशंसनीय है । स्वच्छन्द कवियों में प्रकृति दर्शन की स्वच्छन्द रुचि भी जगी है । इनके यहां प्रकृति उद्दीपन के पाश से मुक्त दिखाई पड़ती है । रीति का व्यवहार अधिक होने का दुष्परिणाम जो होना चाहिये था वही हुआ। कवियों ने अपनी काव्य दृष्टि खो दी, प्रकृति को अपनी दृष्टि से निरीक्षण करना वे छोड़ बैठे । कुछ कवियों ने परंपरा का तिरस्कार करके वसन्त में मयूर का नृत्य अवश्य दिखाया और वर्षा में कोकिल कंठअवश्य खोला पर इससे आगे वे कुछ भी न कर सके। वसन्त का वर्णन करते हुए स्वच्छन्द वृत्ति विशिष्ट द्विजदेव ही ऐसे दिखाई पड़ते हैं जो प्रकृति दर्शन के लिये अपनी दृष्टि स्वच्छन्द करके बाहर निकले हैं । शास्त्र दृष्टि से काम न लेकर उन्होंने आत्म दृष्टि का पूरा उपयोग किया । 'विरह वारीश' में बोधा ने भी प्रकृति का वर्णन कुछ तो शास्त्रबद्ध और बहुत कुछ स्वच्छन्द वृत्तिबद्ध रखा है । अत: इन कवियों की स्वच्छन्दता ने यथार्थ काव्य दृष्टि सामने करने का पूरा उद्योग किया है , इसमें सन्देह नहीं रह जाता[१] ।

ठाकुर का प्रकृति वर्णन : स्वच्छन्दतावादी कवियों की अनेक विशेषताओं में से एक विशेषता यह भी है कि उनका प्रकृति वर्णन भी उनकी स्वच्छन्द प्रकृति के ही अनुसार है । अनुकृत वर्णन की खानापूर्ति मात्र से उन्हें नहीं सन्तोष होता था । ठाकुर ने वसन्त और पावस केवल दो ऋतुओं का वर्णन

---

१. बिहारी, पृ० ४४-४५

किया है । यदि रीतिबद्ध कवि होता तो केवल वसन्त और पावस का वर्णन करके चुप नहीं रहता। ठाकुर के वसन्त वर्णन में कुछ इने गिने वृक्षों, पत्र पल्लवों का नाम गिनाकर , कुछ चुने हुए पक्षियों के कलरव की सूचना देकर वसन्त ऋतु का निर्जीव ढांचा नहीं खड़ा किया गया है । पावस वर्णन के भीतर केशव की तरह प्रलय की आशंका नहीं व्यक्त की गई है । उन वर्णनों में अनेक मोहक चित्रों को देखा दिखाया गया है । ठाकुर के काव्य से आलंबनगत वर्णन का उदाहरण देखिये --

काले लाल पीरे धौरे धावत घुंवा के रंग
कितने तुरंग किते रंग मटमाढ़े हैं ।
कितने मही के रथमाधुरी करत घोर
सोर चहुं ओर होत गहगहे गाढ़े हैं ।।

ठाकुर कहत कवि बरनि बरनि थाके
बरने न जात यों बहरि बर बाढ़े हैं ।
मोहे लेत मनन जो लेखो बने बनन जू
आजु देखो घनन घनेरे रंग काढ़े हैं ।।[1]

उद्दीपनगत वर्णन का उदाहरण देखिये --

दौरि दौरि दमकि दमकि दुरि दामिनि यों
बुन्द देत दमहूं दिखान दरसतु है ।
घूमि घूमि घहरि घहरि घन घहरात
घेरि घेरि घोर घनो शोर सरसतु है।।
ठाकुर कहत पिक पीकि पीकि पी को रटै
प्यारो परदेस पापी प्रानु तरसतु है।
झूमि झूमि झुकि झुकि झमकि झमकि आली
रिमझिम झिमिक अखानु बरसतु है।।[2]

---

१. ठाकुर ठसक, छंद सं० १२०
२. वही; छंद सं० १२२

(३) अलंकृत वर्णन का उदाहरण देखिये --

चौक आसमान में अनेक शौक चाहबी के
गाहक निबाहवे के व्यौंत बिसतारे हैं।
कोई लाल पीरे कोई सेत नीले धारीदार
कोई रंग सेंदुर के कोई घुंवा धारे हैं।।
ठाकुर कहत देखि बादर अनेक रंग
मन मन सूबा के विचार ये विचारे हैं।
बादर न होय बहुमांतिन के रेजा ये
असाढ़ रंगरेजा रंग सूखिबे को डारे हैं[१]।।

(४) प्रकृति वर्णन का बिंब ग्रहणात्मक रूप -- शुक्ल जी बिंब ग्रहण कराना ही प्रकृति वर्णन का साध्यता समझते हैं। निम्नलिखित पंक्तियों को पढ़ने से एक संश्लिष्ट चित्र सामने आता है. --

आम पर मौर देखु मौर पर भौंर देखु
भौंरन पै भौंर देखु गुंजत सुहावने[२]।

(५) रागचित्रों के साथ प्रकृति -- प्रकृति का रम्य वातावरण जीवन के राग चित्रों को नया रंग प्रदान करता है। पावस की घन घटा और वसन्त की बहारें से प्रेमियों की दुनिया में उथल-पुथल मच जाती है। देखिये --

पावस के परपंच विलोकि अनंग ने बान निषंग ते काढ़े।
भूमि हरीरे भरी जहं बूंद उड़े बगुला चै तै सुख बाढ़े।।
ठाकुर बोलि उठे मोरवा घन घेरि उठे जितही तित गाढ़े।
कामरि माफ छिपाए छबीली को छाहरे कान्ह कदंब के ठाढ़े[३]।।

---

१. ठाकुर ठसक, छंद संख्या ११७
२. वही, छंद संख्या ६३
३. वही, छंद संख्या ११४

त्योहार वर्णन : स्वच्छन्द कवियों पर विचार करते हुये पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने लिखा है -- 'स्वच्छन्द दृष्टि ने देश के आनन्दोल्लास में भी इन कवियों को संलग्न किया । वसन्त वर्णन के अन्तर्गत होली के त्योहार का उल्लेख करने के आगे रीतिबद्ध कवि नहीं बढ़े । गुलाल की गरद और केसर की कीच तक ही वे रह गये । इन त्योहारों का चित्र उपस्थित करने की ओर इनकी दृष्टि स्वाधीनता से प्रसारित न हुई । 'ठाकुर' ने अपनी रचना में बुन्देलखण्ड के आनन्दोल्लासमय जीवन के कुछ चित्र रखकर देश के इस सांस्कृतिक वैभव की ओर भी लोगों की दृष्टि खींची । हम तो अपने नागरिक जीवन के अभिमान में अपना प्राचीन संस्कार भी खोते जा रहे हैं । नगरों में त्योहारों का वह उल्लासमय रूप नहीं आता जो भारत के जीवन का प्राण रहा है । गांवों में इस दृष्टि से अपने जीवन का रूप अच्छा और रमणीयक दिखाई देता है । जो प्रान्त या प्रदेश नागरिक जीवन की पंकिलता से दूर या विच्छिन्न हैं उनमें अब भी देश की इस विभूति के बड़े भव्य दर्शन होते हैं । बुन्देलखण्ड में हमारा जीवन खण्ड अपने प्राचीन रूप में अब भी बहुत कुछ सुरक्षित है । 'ठाकुर' कवि ने उस उल्लासमय जीवन में से अरवती, गनगौर, वट सावित्री (वरगदाई) होली आदि के बड़े ही प्रभावुक चित्र सामने किये हैं । रीतिबद्ध कवियों में से किसी किसी ने बुन्देलखण्ड से सम्बद्ध होने के कारण 'गनगौर' का उल्लेख भर कर दिया है, जैसे पद्माकर ने । पर उसका चित्र उपस्थित करने की अभिरुचि नहीं दिखाई है । काव्यशास्त्र में इन त्योहारों का उल्लेख तो है नहीं, फिर रीतिबद्ध कवि इनका अभिनन्दन करने क्यों दौड़ते [१] ?

अब ठाकुर के काव्य में कुछ त्योहारों का वर्णन देखिये --

होरी वर्णन -- डार्‌यो जो गुलाल रंग केसर को अंगन
आन फक्फोर्‌यो नीढ़ौं दौर मुख रोरी में ।
चाह चितवारी हितवारी नितवारी करी
काहे कहौं कौन अब जेहैं व्रजखोरी में ।।
ठाकुर कहत ऐसे रस में निरस होत
कहा भयो छाती जो छबीले हुई चोरी में। क्रमशः--

---

१. बिहारी, पृ० ४५

अंक भरि लीनी तो कलंक कौन रंक कीजै
आज बरजोरी कौ न दोष होत होरी में।।[1]

नीचे के छन्द में होरी का खेल मूर्तिमान हो उठा है --

एकन की कंचुकी चुपर चारु चोवन सों
एकन की बाहन गुलाल मुठ मैले हैं।
एकन के संग नाचें गावैं संग बैन दै,
एकन के संग उर आनन्द उकेले हैं।।
ठाकुर कहत यहै एकन की गारी लाल
एकन की पिचकारी अंगन पै फेले हैं।
मोहिं कत लीन्हें जात बावरी सी उतै जित
कान्ह रंगरातो रसमातो फाग खेले हैं।।[2]

अखती वर्णन : -- बुन्देलखण्ड में वैशाख सुदी तीज के दिन किसी वट वृक्ष के नीचे स्त्रियां पुत्तलिका पूजन करती हैं। पुरुष भी सजधज कर पूजन देखने जाते हैं। पूजा के बाद स्त्रियां पुरुषों से उनकी प्रेयसियों का नाम पूछती हैं। पुरुष भी स्त्रियों से उनके पेम्पियों का नाम पूछते हैं। नाम न बतलाने पर गुलाब या चमेली की छड़ियों से परस्पर आघात करते हैं। नीचे के सवैए में उसी त्योहार का वर्णन है। पुत्तलिका पूजन के बाद ललिता सखियों के साथ कृष्ण के पास जाती है। कृष्ण से उनकी प्रेयसी का नाम पूछती हैं। कृष्ण ने अपनी प्रेयसी का नाम राधा कहीं --

पुतरीन पुजाय बिसोखि सुजान सखीन समाज लिए उमही।
ब्रजचंद विहारी विराजो जहां अखती करी यों सुख पाय सही।।
कह ठाकुर लाल के आगे लता ललिता धरि अंजुलि जोरि रही।
मुसुकाय मनोहर स्याम हरे मुख साधा पुजावन राधा कही।।[3]

दशहरा वर्णन :-- दशहरा के अवसर पर एक गोपबाला अपनी सखी से वहां चलने के लिये कहती है जहां पर कृष्ण पान की दुकान किये बैठे हैं --

---

१. ठाकुर ठसक, छंद सं० ६८
२. वही, छंद सं० १००
३. वही, छंद सं० १०६

आवो चलैं सीजिए जू कीजिए जनम धन्य
करुनानिधान कान्ह पान देन बैठे हैं।[१]

सलोनो वर्णन : श्रावणी के अवसर पर एक गोप कन्या सोचती है --

देखि रक्षा बंधन गोविन्द जू के हाथ साथ
राधे की कजलिया सिरावन को जैहौं मैं।[२]

इस प्रकार स्पष्ट हुआ कि केवल सांस लेना ही जीवन नहीं है। किसी समाज में सांस्कृतिक आयोजन, पर्व, त्योहार -- उस समाज के जीवन के प्रतीक हैं। हमारी हिन्दू संस्कृति उन्हीं जीवित संस्कृतियों में से है। त्योहारों का वर्णन करके ठाकुर ने देश की संस्कृति के प्रति जो स्नेह व्यक्त किया है वह श्लाघ्य है।

---o---

१. ठाकुर ठसक, छंद सं० १२६
२. वही, छंद सं० १२५